अष्टाङ्ग मार्गानुशीलन से नैतिक विकास

डॉ. रामहेत गौतम*

सर्वदोषविनिर्मुक्तं गुणैः सर्वैरलंकृतम्।
प्रणम्य सर्वज्ञमहं सर्व सत्तवैकवान्धवम्।।1

समस्त प्रकार के दोषों से रहित और समस्त प्रकार के नैतिक गुणों से युक्त, समस्त प्राणियों का एक मात्र बन्धु किसी को हानि पहुंचाये बिना, समस्त जीवों का हित चाहने वाला, सर्वज्ञ (समस्त प्राणियों के दुःख, दुःख का कारण, दुःख निदान की सम्भावना और दुःख निरोध के उपाय को जानने वाले) को प्रणाम करता हूँ।

सदियों से भारतीय संस्कृति नैतिक मूल्यों व गुणों से परिपूर्ण रही है। इतिहास साक्षी है कि नैतिकता पर जोर हमेशा दिया जाता है। जैसे कि भारतीय साहित्य जगत के आर्षकाव्य रामायण का मंगलाचरण नैतिक पुरुष की खोज करता हुआ मिलता है।

तपः स्वाध्याय निरतां तपस्वीवाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ बाल्मीकिः मुनिपुङ्गवम्।।
कोन्वस्मिन्सम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़वृतः।।2

नैतिकता ने बुद्ध, विवेकानन्द, सरदार वल्लभ भाई पटेल और बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जैसे लोक साधकों को महान बना दिया। परन्तु आज नैतिक मूल्यों का ह्रास तेजी से जो रहा है। आधुनिक पीढ़ी पूछती है कि नैतिकता क्या है? तब यही कहा जा सकता है कि व्यक्ति के ज्ञान, विचार, कार्य, व्यवसाय और स्मृति में वह अनुशासन जो पुष्प की गन्ध, वर्ण और कोमलता में होता है, एकतारा के तन्तु आदि अवयवों में होता है, जिससे वह लोक हितैषी व लोक ग्राह्य हो जाता है।

अन्धाधुन्ध ऐश्वर्य भोग की चकाचौंध में कीट–पतंगों की भाँति नैतिकता के मानदण्डों को तोड़ते हुए स्वयं के साथ सम्पूर्ण सृष्टि जगत को खतरे की खाई में खपा रहे हैं। बढ़ते भौतिकवाद के कारण गिरते नैतिक मूल्य और लुप्त होती संवेदनाएँ बुद्धिजीवी वर्ग को चिन्तन के लिए विवश करती हैं। नैतिकता से महान बने पूर्व मनीषियों के मार्ग का सहारा लिए बिना भविष्य की योजना के लिए वर्तमान का चिन्तन पूर्ण नहीं होता। अतः पूर्वपुरुष तथागत बुद्ध के उपदेशों पर आधरित

सहायक प्राध्यापक संस्कृत, डॉ.हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर म.प्र.

'अष्टांग मार्ग अनुशीलन से नैतिक विकास' आज की चर्चा का विषय है।

महावग्ग में बुद्ध ने 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' को ही 'दुःखनिरोधगामिनी मार्ग' कहा है। ''इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं अयमेव अरियो अट्ठंगिको मग्गो, सेय्यथीदं सम्मादिट्ठि, सम्मासंकल्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।''3

अपनी देशना में तथागत ने बताया है कि दुःख को दूर करने का एकमात्रा उपाय है 'अष्टाङ्गिक मार्ग' ही है। धम्मपद में तथागत ने कहा है

''एसो व मग्गो नत्थासो दस्सनस्य विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ।।4

यही एकमात्र श्रेयस्कर मार्ग है, जिस पर प्रतिपन्न होकर दुःखों का अन्त किया जा सकता है।

जिस मार्ग पर चलकर तथागत ने स्वयं 'निर्वाण' प्राप्त किया है, वही 'मध्यम मार्ग' जन–सामान्य को भी दिखाया। तथागत ने स्वयं अनुभव किया है कि किसी भी 'तत्त्व' की 'अति' और 'न्यूनता' दोनों उन्मार्ग की ओर ले जाने वाले हैं। अतः मनुष्य को दोनों प्रकार की अतियों से बचना चाहिए और दोनों अन्तों के मध्य में रहना ही 'सभ्यता' है। किसी भी वस्तु के दोनों अन्त सन्मार्ग की ओर ले जाने वाले नहीं हैं अर्थात् किसी भी वस्तु में अत्यधिक तल्लीनता अथवा उससे अत्यधिक वैराग्य दोनों अनुचित हैं। उदाहरण देकर तथागत ने समझाया है कि अधिक भोजन करना भी दुःखदायी है और बिलकुल भोजन न करना भी दुःख का कारण है। अतः सत्य तो दोनों अन्तों के बीच में ही रहता है। इस शोभन मध्य को अधिक महत्त्व देने के कारण ही बुद्ध का मार्ग 'मध्यम प्रतिपदा' (मध्यम मार्ग) कहा जाता है।5 'मध्यम प्रतिपदा' का प्रतिपादन करते हुए बुद्ध ने कहा है ''द्वे भिक्खवे अत्ता पवज्जितेन न सेवितब्बा। कतमे द्वे यो चार्य कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो। यो चार्य अन्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते खो भिक्खवे उभे अन्ते अनुपगम्य मज्झिमा पटिपदा तथागतने अभिसंबुद्धा चक्खुकरणी जाणकरणी उपसमाय अभिंजाय सम्बोधाय निब्बाणं संवत्ताति।''

अर्थात् हे भिक्षुगण! संसार का परित्याग कर निवृत्ति मार्गगामी को चाहिए कि दोनों अन्तों का सेवन न करें, वे दो अन्त कौन से हैं?

प्रथम 'काम्य वस्तुओं में भोग की इच्छा से सदा लगा रहना।' यह विषयानुयोग हीन ग्राम्य, आध्यात्मिकता से पृथक् ले जाने वाला, अनार्य तथा अनर्थ उत्पन्न करने वाला है।

दूसरा 'शरीर को कष्ट देना।' यह भी दुःख, अनार्य तथा हानि उत्पन्न करने वाला है।

इन दोनों अन्तों के सेवन करने से मानव भव–चक्र से कभी उद्धार नहीं पा सकता। उसके उद्धार का रास्ता इन अन्तों को छोड़कर बीच का मार्ग है। यह मार्ग नेत्र उन्मीलन करने वाला, ज्ञान उत्पन्न करने वाला है, यह चित्त को शान्ति प्रदान करता है, सम्यक् ज्ञान पैदा करता है तथा निर्वाण उत्पन्न करता है। इसी मार्ग का सेवन प्रत्येक प्रव्रजित के लिए हितकर है। अतः बुद्ध कहते हैं–

रहस्यं त्वं हि चैतेषां चतुर्णां विद्धि सुव्रत।
सन्नद्धो भव मार्गेऽस्मिन् दुःखनाशैककारणे।।
ये च स्थास्यन्ति मार्गेऽस्मिन् परं पारं गते मयि।
ते च प्राप्स्यन्ति निर्वाणमहार्यं नैष्ठिकं पदम्।।6

अर्थात् हे सुव्रत! इन चारों (आर्यसत्यों) का रहस्य तुम जानो और दुःख नाश के एकमात्रा कारण इस मार्ग (मध्यम मार्ग) में तुम प्रवृत्त हो जाओ। हमारे उस पार जाने (शरीर त्याग देने) पर जो इस मार्ग (मध्यममार्ग) में स्थिर रहेंगे वे अहार्य, नैष्ठिक निर्वाण पद प्राप्त करेंगे। शान्त, सतुष्ट, तत्त्वज्ञ और दार्शनिक को आसानी से विवेक की उपलब्धि होती है तथा मद, मान और अनासक्त बुद्धि वाले को आसानी से वैराग्य होता है–

शान्तस्य तुष्टस्य सुखो विवेको विज्ञाततत्त्वस्य परीक्षकस्य।
प्रहीणमानस्य च निर्मदस्य सुखं विरागत्वमसक्तबुद्धेः।।7

इस तत्त्व को भलीभाँति जान लेने वाला चिन्ता व आकुलता से मुक्त हो जाता है।

अति और न्यूनता से परे मध्य का मार्ग होने से प्रत्येक प्राणी के लिए सरल व सहज है और प्रत्येक मुमुक्षु के लिए खुला है।

इस मार्ग की आठ अवस्थायें हैं

1 सम्यक् दृष्टि	2 सम्यक् सङ्कल्प
3 सम्यक् वाक्	4 सम्यक् कर्मान्त
5 सम्यक् आजीव	6 सम्यक् व्यायाम
7 सम्यक् स्मृति	8 सम्यक् समाधि।

यहाँ हम पाते हैं कि 'आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग' के आठों अङ्गों में सम्यक् शब्द का प्रयोग किया गया है। सम्यक् से तथागत का अभिप्राय दोनों अन्तों की मध्यमावस्था से है अर्थात् न तो कठोर तपस्या ही उचित है और न भोगमयी प्रवृत्तियों में लिप्त होना अर्थात् न अत्यध्कि भोगविलासिता और न अत्यध्कि त्याग करना ही उचित है। हमें वही और उतना ही उपयोग में लाना चाहिए, जितने में हमारा 'तन', 'मन' और 'बुद्धि' स्वस्थ रहकर ध्यान योग में प्रवृत्त हो सकें। तथागत ने कहा है

'दुष्कराणि...तपांस्यनशनेन... ।'8
त्वगास्थिशेषो निःशेषमदःपिशितशोणितैः।
क्षीणोऽप्यक्षीणगाम्भीर्यः ... ।।9
'अथ कष्ट तपः स्पष्ट व्यर्थक्लिष्टतनुर्मुनिः।'10
'नायं धर्मो विरागाय न बोधाय न मुक्तये।'11
क्षुत्पिपासाश्रमक्लान्तः श्रमादस्वस्थ्यमानसः।
प्राप्नुयान्मनसावाप्यं फलं कथमनिर्वृत्तः।।12

निराहार रहकर दुष्कर तप करने से शरीर, मेदा, मांस, खून से रहित त्वचा एवं हड्डी मात्र शेष रह जाता है, जिससे शरीर को व्यर्थ कष्ट होता है। क्षुध, पिपासा, थकान से क्षीण एवं परिश्रम से जिनका मन अस्त–व्यस्त हो जाता है ऐसा अशान्त मनुष्य, मन से प्राप्त होने वाला फल कैसे प्राप्त कर सकता है। यह धर्म न वैराग्य दे सकता है, न बोध और न मुक्ति।

राज्ञोऽपि वासोयुगमेकमेव क्षुत्सन्निरोधय तथान्नमात्रा।
शय्या तथैकासनमेकमेव शेषा विशेषा नृपतेर्मदाय13

राजा हो या सामान्य साधक प्रत्येक को जीवन–यापन के लिए एक ही जोड़ा वस्त्र, उसी तरह क्षुधा–निवृत्ति के लिए अन्न की कुछ मात्रा, एक शय्या एवं एक ही आसन आवश्यक है। शेष विशेषतायें ऐश्वर्यसाधन तो मद के लिए हैं।

अत्यधिक ऐश्वर्य के साधन जुटाकर जो तृष्णा से आक्रान्त है, वह इस लोक और परलोक में सर्वत्रा दुःख ही दुःख पाता है। 14 अतः 'बुद्ध' ने कहा है

मूढग्राहतपो यश्च विषयान् यश्च सेवते।
असन्मार्गाश्रितौ तौ द्वौ मोक्षो नैवमवाप्यते।।15
तपोभोगौ परित्यज्य मध्यमार्गोऽवलम्बितः।
मया दुःखमधः कृत्य सुखस्यापि परो हि यः।।16

जो मूढ़ता के कारण काम–क्लेश रूप तपस्या का हठ करते हैं तथा जो विषय में आसक्त हैं, वे दोनों गलत मार्ग का आश्रय लिए हैं इस तरह मुक्ति नहीं मिलती।

इस 'मध्यम मार्ग' के अष्टाङ्गों की व्याख्या इस प्रकार है

1 सम्यक् दृष्टि (सम्मादिट्ठि) सम्यक् दृष्टि के लिए मज्झिम निकाय में कहा गया है कि ''जब श्रावक दुःख को जानता है, दुःख समुदय (दुःख की उत्पत्ति या कारण) को जानता है, दुःख निरोध को जानता है और दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद को जानता है यही सम्यक् दृष्टि है।'' सम्यक् दृष्टि का अर्थ जो चीज जैसी है, उसे वैसा ही जानना। जो चार आर्य सत्य बतलाये गए हैं, उनके अनुरूप जीवन प्रकृति को देखना, यही सम्यक् दृष्टि है।17 शरीर(कायिक), वाणी(वाचिक) तथा मन(मानसिक)

से होने वाले कर्म कुशल और अकुशल (अनुत्तम) दो–दो प्रकार के होते हैं, इन दोनों को भली–भाँति जानना 'सम्यक् दृष्टि' कहलाता है। कुशल और अकुशल कर्मों को 'मज्झिम निकाय' में इस प्रकार समझाया गया है

	अकुशल	कुशल
1	प्राणातिपात (हिंसा)	अहिंसा
2	अदत्तादान (चोरी)	अचौर्य
3	मिथ्याचार (व्यभिचार)	अव्यभिचार
4	मृषावचन (झूठ)	अमृषावचन
5	पिशुनवचन (चुगली)	अपिशुनवचन
6	परुषवचन (कटुवचन)	अकटुवचन
7	संप्रलाप (वकवाद)	असंप्रलाप
8	अमिध्या (लोभ)	अनामिध्या
9	व्यापाद (प्रतिहिंसा)	अव्यापाद
10	मिथ्या दृष्टि (झूठी धरणा)	अमिथ्यादृष्टि।

अकुशल का मूल = लोभ, दोष, मोह।

कुशल कर्म का मूल = अलोभ, अदोष, अमोह।

इन कुशलाकुशल कर्मों का सम्यक् ज्ञान रखना परमावश्यक है, साथ ही चार आर्य सत्यों को भली–भाँति जानना भी परमावश्यक है यही सम्यक् दृष्टि है। कुशल–अकुशल का विवेकी ही सच्चा ज्ञानी ब्राह्मण होता है।

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपोऽघृणा।
दृश्यन्ते यत्रा नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः।। 18

जिस प्रकार सूर्य लौकिक मार्ग का प्रकाशक है, उसी प्रकार 'सम्यक् दृष्टि' अष्टाङ्गिक मार्ग (निर्वाण मार्ग) का प्रकाशक है।

'सम्यग्दृष्टिरविर्यस्य मार्गस्यास्ति प्रकाशकः।'19

2 सम्यक् सङ्कल्प (सम्मासङ्कप्पो) सम्यक् सङ्कल्प का अर्थ है 'पवित्र चिन्तन'। काम, ईर्ष्या, क्रूर आदि अपवित्र कर्मों से मुक्त रहना। इनसे मुक्त रहना ही मनुष्यता की पूर्णता है। मनुष्य की पूर्णता उसके शील में है। क्योंकि पुष्पगन्धा वायुवेग व दिशा तक ही सीमित होती है, जबकि शील सर्वदिशानुगामी होता है।

चन्दनं तगरं वा पि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो।। 20

रघुवंशियों का शील आज भी कीर्ति प्राप्त है।

धनिनोऽपि निरुन्मादायुवानाऽपि न चंचलः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते राजानो रघुवंशजाः।। 21

''नैष्कर्म संकल्प, अव्यापाद संकल्प एवं अविहिंसा संकल्प।''

भिक्षुओ! यह सम्यक् सङ्कल्प कहलाता है, मनुष्य अपने जीवन में उठने वाले सङ्कल्प–विकल्पों का अनुगमन करता है इसलिए सङ्कल्प–विकल्प का सम्यक् होना नितान्त आवश्यक है। सम्यक् सङ्कल्प वाह्य कर्मों का आन्तरिक पक्ष है। सम्यक् सङ्कल्प का अनुशीलन करने से मनुष्य सभी जीवधारियों के प्रति सद्भाव रखता है तथा पवित्र कार्य करने का व्रत लेता है। सम्यक् सङ्कल्प के अनुशीलन का सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रत्येक मनुष्य को सङ्कल्प करना चाहिए कि वह विषयों की कामना नहीं करेगा, प्राणियों से द्रोह नहीं करेगा और किसी प्राणिमात्र की हिंसा नहीं करेगा। दूसरे शब्दों में अशुभ न करने का सङ्कल्प ही सम्यक् सङ्कल्प है। इसमें त्याग और परोपकार की भावना सन्निहित है।22

'सम्यक् सङ्कल्प' 'अष्टाङ्गिक मार्ग' पर चलने वाला रथ है।

'सम्यक् संकल्परूपस्य रथस्य सुपथोह्ययम्।'23

3 सम्यक् वाक् (सम्मावाचा) सम्यक् वचन को ही बौद्ध साहित्य में सम्यक् वाक् कहा गया है। मनुष्य को सङ्कल्प के द्वारा वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिए। कभी भी झूठ न बोलकर सदैव सत्य बोलना, किसी की चुगली और निन्दा नही करना, सबसे प्रेमपूर्वक बोलना, बात सदैव सहृदयतापूर्ण एवं मधुर हो जैसे महाराज शुद्धोदन द्वारा कुमार 'सर्वार्थसिद्ध' से युवावस्था के सुखोपभोग पर्यन्त ही वन जाने की बात सुनकर 'बोधिसत्त्व' सर्वार्थसिद्ध मधुरतापूर्वक एवं साफ–साफ अपनी बात कह देते हैं कि

''यदि मे प्रतिभूश्चतुर्षु राजन् भवसि त्वं न तपोवनं श्रयिष्ये।''24

हे राजन! यदि चार बातों में मेरे रक्षक बनें तो मैं वन का आश्रय न लूँ।

सम्यक् वचन, उत्तेजित एवं दुराग्रहपूर्ण नहीं होते और न दूसरों को उत्तेजित करते है। सम्यक् वचन ही व्यक्ति को समाज से बाँधने वाली कड़ी है। सम्यक् वचन मानव समाज को संगठित करता है, सम्यक् वचन के अनुशीलन से मनुष्य की वाणी में शुद्धता व मधुरता आती है अतः कहा जाता है कि ''सम्यक् वाणी' ऐसा सम्मोहन मन्त्र है जिससे किसी को भी वश में किया जा सकता है।' अतः दूसरे लोगों को आहत् करने वाले असत्य, पिशूनवचन, कटुवचन तथा वकवाद वचनों से सभी को बचना चाहिए।

सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्त्वा उपसम्मति।।25

हजारों निरर्थक पदों के संग्रह की अपेक्षा वह एक सार्थक पद ही श्रेष्ठ

है, जिसे सुनकर शान्ति स्थापित होती है। 'सम्यक् वाणी' विमल आशय वाले 'अष्टांगमार्ग' का आश्रय है।

'नानोपदेश रम्यायां सम्यग्वाण्यां विरम्यते।'26

4 सम्यक् कर्मान्त :– सम्माकम्मन्तो सम्यक् कर्मान्त का अर्थ है ठीक कर्म अथवा यथार्थ कर्म। सत्त्वों का कर्म प्रबल होता है, कर्मों पर ही सत्त्व निर्भर है। उसके जैसे कर्म होंगे, वैसी ही उनकी गति होगी। यदि बुरे कर्म किये हैं, तो नरकगामी होगा और यदि सत्कर्म किये हैं तो स्वर्ग या निर्वाण की प्राप्ति होगी। हिंसा, चोरी और काममिथ्याचार से विरत रहना ही सम्यक् कर्मान्त है। सम्यक् कर्मान्त से सत्त्व पाप से ऊपर उठता है और सदाचारी बनता है। सम्यक् कर्मान्त ही सत्त्व का सच्चा मित्र है। सम्यक् सङ्कल्प को मानसिक एवं वाचिक के साथ–साथ कर्म रूप में भी पालन करना ही सम्यक् कर्मान्त है। इस प्रकार सम्यक् कर्मान्त सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सङ्कल्प और सम्यक् व्यायाम से सम्बन्ध रखता है। बौद्ध–दर्शन वाङ्मय में सम्यक् कर्मान्त के अन्तर्गत 'पञ्चशील' का अनुष्ठान प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य बतलाया गया है ये पञ्चशील हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सुरा–मैरेय आदि पदार्थों का सेवन न करना जिसका निरोध बुद्ध ने इस प्रकार किया है

1 पाणातिपाता वेरमणि सिख्खा पदं समादियामि।
2 अदिन्नादाना वेरमणि सिख्खा पदं समादियामि।
3 कामेषु मिच्छाचारा वेरमणि सिख्खा पदं समादियामि।
4 मुसावादा वेरमणि सिख्खा पदं समादियामि।
5 सुरा, मेरय, मज्ज पमादट्ठाणा वेरमणि सिख्खा पदं समादियामि।

अर्थात्

1 हत्या नहीं करना। सभी जीवों के प्रति उदारता और दयाभाव रखना।
2 चोरी न करना।
3 काम भोगों, मिथ्याचरण आदि को छोड़ना। अर्थात् परस्त्री गमन से विमुक्ति (विरति)
4 असत्य न बोलना।
5 नशावर्जन (मद्यनिषेध)।

इन कर्मों का अनुष्ठान सभी के लिए विहित है। काममुक्ति तथा हत्या से बचने पर विशेष बल दिया गया है। पञ्चशील कर्म के पालन से व्यक्ति विपत्तियों से बचा रहता है।

''सम्यक् कर्मान्तनिष्कूटे विहारी विमलाशयः।''

5 सम्यक् आजीविका (सम्माआजीवो) 'सम्यक् आजीव' का अर्थ है सत्त्वों के

जीवन–यापन के सत्साधन। इस संसार में हजारों सत्त्व, हजारों तरह से अपनी–अपनी जीविका चलाते हैं। बुद्ध ने स्वयं 'दीर्घनिकाय' के ब्रह्मजालसुत्त में सत्त्वों की नाना आजीविकाओं का वर्णन करते हुए कहा है कि सत्त्व अपने जीवन का निर्वाह कैसे–कैसे साधनों को अपनाकर करते हैं। लोग विष, शस्त्र, सत्त्व, मदिरा–मांस बेचकर, झूठे नाप–तौल से ग्राहकों को धोखा देकर, दासों–नौकरों एवं जानवरों का व्यापार आदि करके अपना जीवन–निर्वाह करते हैं, ये ही सब मिथ्या आजीव हैं और इन्हीं आजीविकाओं का सहारा न लेकर सदाचरण से जीवन–यापन करना ही सम्यक् आजीव है।27 अर्हत ने उस समय के जीविका उपार्जन के साधनों में पाँच जीविकाओं को हिंसाप्रवण होने से अयोग्य ठहराया है।28

1	सत्त(शस्त्र)वणिज्जा	हथियारों का व्यापार
2	सत्त्वणिज्जा	जीव–जन्तुओं का व्यापार
3	मंसवणिज्जा	मांस का व्यापार
4	मज्जवणिज्जा	मद्य, शराब का व्यापार
5	विसवणिज्जा	विष का व्यापार।

इनके अलावा तराजू की ठगी, कंस (वटखरे) की ठगी, मान (नाप) की ठगी, रिश्वत, वञ्चना, कृतघ्नता, साचियोग (कुटिलता), छेदन, वध, बन्धन, डाका, लूटपाट की जीविका भी गर्हणीय है।29 इन कार्यों के निषेध से समाज को किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं पहुँचता। अतः जितना हो सके जीवन को सादा बनाना चाहिए, जिन पर पारिवारिक या व्यापारिक जिम्मेदारियाँ हैं, उन्हें भी सादगी से रहना चाहिए। सम्यक् आजीविका के अनुशीलन से समाज में सुख–शान्ति बनायी जा सकती है।

न परेसं विलोमानि, न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य, कतानि अकतानि च।। 30

दूसरों के विलोग (दोष) और करणीय–अकरणीय पाप–पुण्य को परखने की अपेक्षा स्वयं के करणीय–अकरणीय कार्यों की समीक्षा सदा करो। अन्य शास्त्रों में सम्यगाजीव पर जोर दिया गया है। जैसे कि–

अजरामरावत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीतमिव केशेषु, मृत्युना, धर्ममाचरेत्।। 31

अर्थात् ग्रहस्त को चाहिए कि वह विद्या व धन का संचय अपनी मूल–भूत आवश्यकताओं के अनुसार ही करे। धन का अभाव व अधिकता दोनों ही कष्टकर होते है। आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के साधक के लिए सम्यक् आजीविका का अनुशीलन सम्यक् दृष्टि, सम्यक् व्यायाम तथा सम्यक् स्मृति संबंधित है। सम्यक् आजीविका ही मध्यम मार्ग का अनामय (दोष रहित) भोजन है।

'सम्यगाजीविका त्वस्य भोजनं चाव्यनामयम्।'

6 सम्यक् व्यायाम (सम्मावायामो) व्यायाम का अर्थ है 'प्रयत्न'। अकुशल धर्मों दुर्गुणों का त्याग करना और कुशल धर्मों सद्गुणों का उपार्जन करना ही सम्यक् व्यायाम है। बौद्ध साहित्य में सम्यक् व्यायाम को चार प्रकार का बताया गया है32

1 संवर प्रधान, 2 प्रहाण प्रधान, 3 भावना प्रधान, 4 अनुरक्षण प्रधान।

1 संवर प्रधान मन में कुविचार न आने देना।

2 प्रहाण प्रधान मन में आये कुविचार दूर (नष्ट) करना।

3 भावना प्रधान मन में सद्विचार उत्पन्न करने की चेष्ट करना।

4 अनुरक्षण प्रधान मन में उत्पन्न हुए सद्विचारों को बढ़ाकर पूर्णता तक पहुँचाने की चेष्ट करना।

सम्यक् व्यायाम का दृढतापूर्वक अनुशीलन करने से सामाजिक जीवन में उपासक या साधक के आचरण में कुप्रवृत्तियों, बुरी भावनाओं एवं बुरे विचारों का परित्याग कर सद्विचारों की ओर प्रवृत्त होना है। सम्यक् व्यायाम(अभ्यास) से सन्तुलन आता है। व्यायाम के बिना समस्त ज्ञान निरर्थक है।

अनभ्यासे विषं विद्या 33

सम्यक् व्यायाम सर्वगामी चक्रवर्ती (मध्यम मार्ग) का पोषक है।

'सम्यक्व्यायामभृत्योऽसौ चक्रवर्ती च सर्वगः।'34

7 सम्यक् स्मृति (सम्मासति) स्मृति का अर्थ है 'स्मरण'। सम्यक् स्मृति का अर्थ हुआ 'सही स्मरण' अर्थात् विवेक को जाग्रत रखना। शरीर के सुख–दुःख आदि वेदनाओं का बार–बार अवलोकन करना, अपने चित्त का अवलोकन करना ताकि इन्द्रिय एवं उनके विषयों से कौन से बंधन उत्पन्न होते हैं, उनका नाश कैसे किया जा सकता है आदि मनोधर्मों का अच्छा विचार करना ही सम्यक् स्मृति है। जिस किसी की भी स्मृति जितनी दृढ़ होगी वह उतना ही जागरुक और सावधान होगा तथा ज्ञान–लाभ में बढ़ा–चढ़ा रहेगा। स्मृति आलम्बन में प्रवेश कर विषय को निश्चित रूप से चित्त में स्थिर करती है। लोभ और दौर्मनस्य को दूर कर काम, वेदना, चित्त और धर्म अर्थात् मन के विषयों के प्रति जागरुक, प्रयत्नशील, ज्ञानयुक्त, सावधान रहना ही सम्यक् स्मृति है।

'सम्यक् स्मृति' को बौद्ध धर्म में काफी महत्त्व दिया गया है। यह ज्ञान–प्राप्ति एवं विशुद्धि तथा निर्वाण का साक्षात्कार कराने का एकमात्र मार्ग है, तभी तो तथागत अपने शिष्यों को स्मृति सम्प्रज्ञान से युक्त रहने के लिए आदेश देते हैं। भिक्षु सदैव आने–जाने, देखने–भालने, सिकोड़ने–पसारने, संघाटी–पात्र और चीवर को धरण करने, खाने–पीने, सोने–उठने–बैठने, बोलने और मौन रहने में स्मृति और सम्प्रज्ञान से युक्त होता है। 'बोधिचर्यावतार' में कहा भी गया है कि ''नरक की पीड़ा का स्मरण

करते हुए भी स्मृति को मन से क्षण भर के लिए भी नहीं हटाना चाहिए। चित्त की शुद्धता व सुदृणता पर जोर देते हुए तथागत ने कहा है कि –

यथा अगारं सुच्छन्नं बुद्धि न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति।। 35

सदा जागरुक स्मृतिवान भिक्षु ही तृष्णा–जाल को काटकर निर्वाण पाता है।''वह मध्यममार्गी सम्यक् स्मृति रूपी मनोहर नगर में अक्षय शान्ति पाता है।

''सम्यक्स्मृतिपुरे रम्ये शश्वच्छान्तिं निगच्छति।'36

8 सम्यक् समाधि(सम्मासमाधि) कुशल चित्त की एकाग्रता को 'समाधिकहा गया है। 'कुशल चित्तैकाग्रता समाधि।'37 सम्यक् समाधि वह है, जिससे मन में विक्षेपों को हटाया जा सके। सम्यक् समाधि आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अन्तिम सहायक बिन्दु है। अष्टाङ्गिक मार्ग के इन सातों नियमों (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सङ्कल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् आजीव, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् व्यायाम और सम्यक् स्मृति) का पालन करने वाला साधक ही सम्यक् समाधि में प्रवेश करने योग्य बन पाता है। सम्यक् समाधि में ध्यान की चार अवस्थाएँ हैं–

क अपूर्वानन्द एवं शान्ति के अनुभव की अवस्था साधक इस अवस्था में शान्त चित्त से आर्य सत्यों का चिन्तन करता है। वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता नामक पाँच ध्यानांगों सहित प्रथम ध्यान होता है।

ख सभी सन्देहों से मुक्त अवस्था अध्यात्म सम्प्रसाद, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता नामक चार ध्यानांगों सहित द्वितीय ध्यान होता है। इसमें साधक सभी सन्देहों से मुक्त हो जाता है। साधक की आर्य सत्यों के प्रति अगाध श्रद्धा होती है और चित्त में स्थिरता आती है।

ग विकार शान्ति अवस्था उपेक्षा, स्मृति, सम्प्रज्ञान, सुख और समाधि ये युक्त पाँच ध्यानांगों सहित तृतीय स्थान होता है। इस अवस्था में काम, क्रोध, लोभ आदि विकार शान्त हो जाते हैं। सुख–दुःख का कोई भाव नहीं रहता, साधक साम्यावस्था को प्राप्त करता है।

घ चित्तप्रवृत्तियों का निरोध अवस्था अदुःखसुखा वेदना, उपेक्षा परिशुद्धि, स्मृति परिशुद्धि और समाधि इन चार ध्यानांगों सहित चतुर्थ ध्यान होता है। ध्यान की इस चतुर्थावथा में चित्त की सभी प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है। चित्त पूर्ण एकाग्र अवस्था में रहता है, यही पूर्ण प्रज्ञा की अवस्था है, यह अर्हत्व या निर्वाण है। निर्वाण का साक्षात्कार करना ही बुद्ध एवं बौद्धों का जीवन–दर्शन है।

'सम्यक् समाधिशरयायां शेतेऽसौ सुसमाहितः।'38

'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखाद्येन विमुच्यते।'39

यह मध्यम मार्ग सम्यक् समाधि रूपी शैय्या पर समाधन पूर्वक सोता है

अर्थात् समाधि की अवस्था में आकर मध्यममार्गी साधक का चित्त पूर्णतः शान्त व स्थिर हो जाता है और साधक जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि रूप दुःख से छूट जाते हैं। निर्वाणाप्त गौतमी कहती है–

सब्बदुख्खं परिञ्ञातं, हेतुतण्हा विसोसिता।
अरिसट्ठंगिको मग्गो, निरोधे फुसितो मया।। 40
बुद्धवीर नमो त्यथु, सब्बसत्तानमुत्तमं।।
यो मं दुख्खा पमोचेसि, अञञ्च बहुकं जनं ।। 41

सन्दर्भ –

1 नागार्जुन कृत रत्नावली
2 रामायण प्रथम काण्ड, प्रथम सर्ग–1
3 महावग्ग, पृ. 13
4 धम्मपद 20/2/3
5 उद्धृत, महाकवि अश्वघोष के साहित्य में धर्म और दर्शन
6 बुद्धचरित 24/29,30
7 सौन्दरनन्द 18/42
8 बुद्धचरित 12/94
9 बुद्धचरित 12/99
10 बुद्धचरित 12/100
11 बुद्धचरित 12/101
12 बुद्धचरित 12/103
13 बुद्धचरित 11/48
14 बुद्धचरित 11/55
15 बुद्धचरित 15/33
16 बुद्धचरित 15/40
17 बौद्धदर्शन, डा. राजेन्द्र प्रसाद शाक्य
18 महाभारत वन पर्व 180/21
19 बुद्धचरित 15/41
20 धम्मपद 55
21 रघुवंश प्रथम सर्ग
22 महाकवि अश्वघोष के साहित्य में धर्म और दर्शन डा. दीपक पाठक
23 बुद्धचरित 15/41
24 बुद्धचरित 5/34
25 धम्मपद 8/1

26 बुद्धचरित 15/42
27 दीर्घनिकाय 1/5
28 उद्धृत, महाकवि अश्वघोष के साहित्य में धर्म और दर्शन
29 लक्खणसुत्त 3
30 धम्मपद –50
31 हितोपदेश प्रस्तावना
32 बौद्धदर्शन डा. राजेन्द्र प्रसाद शाक्य
33 हितोपदेश प्रस्तावना
34 बुद्धचरित 15/43
35 धम्मपद – 14
36 बुद्धचरित 15/44
37 विशुद्धिमार्ग की रूपरेखा डा. भिक्खु धर्मरत्न, पृ. 3.
38 बुद्धचरित 15/44
39 बुद्धचरित 15/45
40 थेरीगाथा
41 थेरीगाथा